आत्मानात्म विचार

१००८ अनन्तविभूषित स्वामी श्रीहरिहरानन्द सरस्वती
(करपात्रीजी के) शिष्य स्वामी अनन्तानन्द सरस्वती

प्रकाशक—
बाबू रघुवंश सिंह
गाँव—पचरुखिया, पोष्ट—नगवागढ़ (गया)

१९६६] [मूल्य १५ पैसा
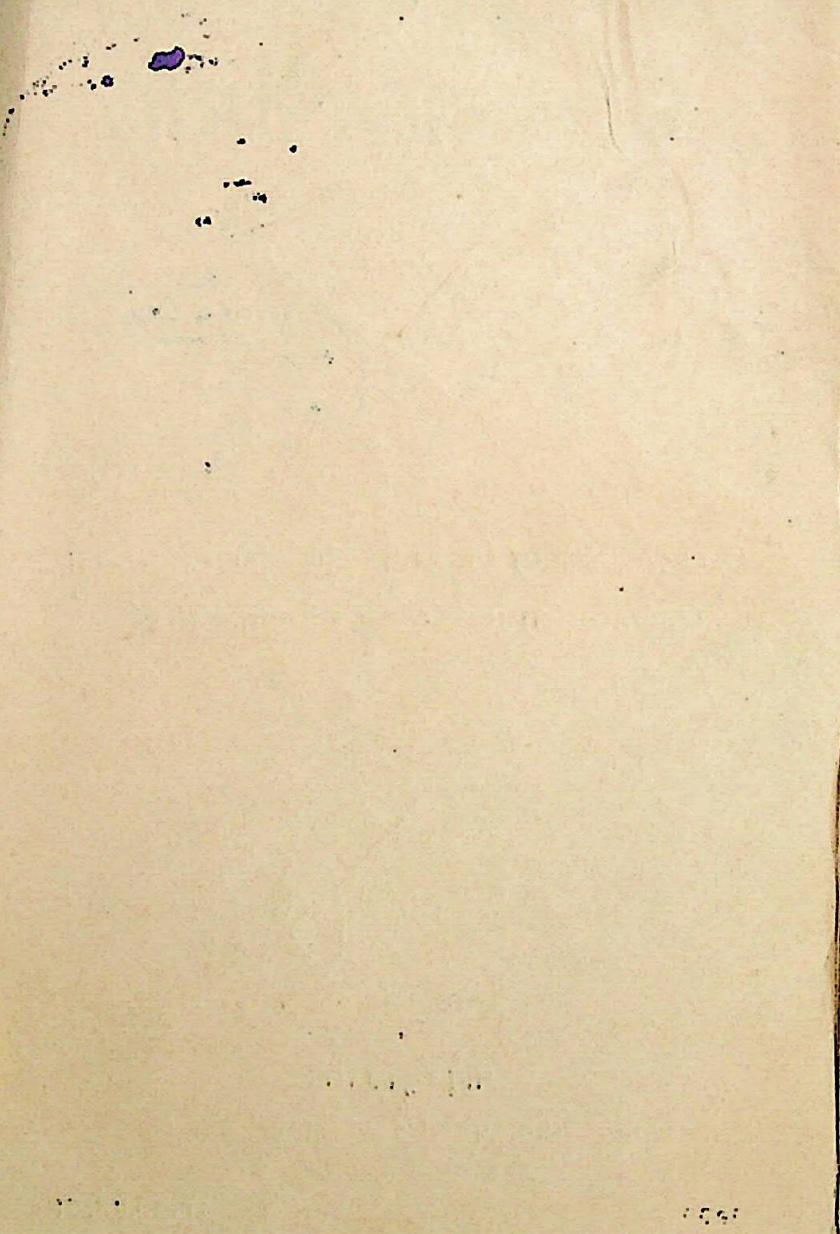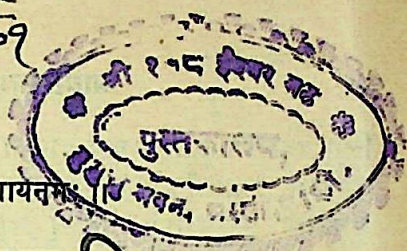
।। श्री गणेशायनमः ।।

आत्मानात्म विचार

चित्सदानन्द रूपाय सर्वधीवृत्ति साक्षिणे ।
नमो वेदान्तवेद्याय ब्रह्मणेऽनन्तरूपिणे ।। १ ।।
यदज्ञानादिदं भाति यज्ज्ञानाद्विनिवर्तते ।
नमस्तस्मै चिदानन्द वपुषे परमात्मने ।। २ ।।
तपोभिः क्षीण पापानां शान्तानां वीतरागिणाम् ।
मुमुक्षुणांमपेक्ष्योऽयमात्म बोधोविधीयते ।। ३ ।।
अनात्मभूतदेहादौ आत्मबुद्धिस्तु देहिनाम् ।
साविद्यातत्कृतो बन्धस्तन्नाशो मोक्ष उच्यते ।। ४ ।।

यह जीव अनादि कालसे अविच्छिन्न जन्म जरामरण शोकादि अनेक अनर्थोंसे युक्त क्षण-क्षणमें अन्यथा भाव प्राप्त होनेवाला मृग-तृष्णाके जल गन्धर्व नगर दृष्टनष्ट स्वरूप तथा केलेके खम्भेके समान निःसार संसारमें भटक रहा है। यद्यपि यह जीव चैतन्यात्म ज्योति स्वरूप है, "अयमात्मा ब्रह्म" इति श्रुतेः तथापिं अनाद्यनिर्वचनीय अज्ञान स्वरूप अविद्यासे, अत्यन्त पृथक् अन्धकार और प्रकाशके समान विरुद्ध धर्मवान् अनात्मा अनित्य जड़ देहमें नित्य चैतन्य आत्मा-के अध्याससे सत्य आत्मा और अनृत देहमें एकी भाव प्राप्त करके यह 'मैं' और यह मेरा स्वभाव सिद्ध ब्यवहार चल रहा है। यह मिथ्या प्रतीति सबको प्रत्यक्ष ही है। यही सत्यानृतका एकीभाव समस्त अनर्थका मूल है। इस अज्ञान जन्य अनर्थको नाश करनेके

लिए वेदान्तमें ब्रह्मात्मैकत्व ज्ञानका प्रतिपादन किया गया है। यही अपरोक्ष ब्रह्मात्मैकत्व ज्ञानका नाम मोक्ष है। ज्ञानी ज्ञानसे, एवं भक्तलोग पराभक्तिसे भगवत् साक्षात्के द्वारा अज्ञान दूर करके परमानन्द स्वरूप परमपद प्राप्त करते हैं।

वेदान्तका सिद्धान्त है, कि **"सत्यं ब्रह्म जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"** ब्रह्मसत्य जगत् मिथ्या है जीव भी ही ब्रह्म ही है। ब्रह्मका लक्षण है, **"सत्यंज्ञान मनन्तं ब्रह्म"** ब्रह्मसत्य है, अनन्तज्ञान स्वरूप है। समस्त संसारके प्राणी भी अपनेको सदा बने रहें, एवं अनन्त ज्ञान तथा पूर्ण सुखी रहें यही कामना करता रहता है। इसका कारण यही है कि जीव भी ब्रह्म स्वरूप है अतः अपने कारण स्वरूप प्राप्त करना चाहता है।

स्वाश्रय, स्वविषय, स्वभावगम्य, भाव रूप, अनिर्वचनीय अवस्तु अनादि अविद्या से सत्य ज्ञानानन्द स्वरूप ढकसा गया है। अतः देहात्म वादी इस देहको ही आत्मा मानकर देह सुखके लिए ही अथक् प्रयत्न करते हुए दिखाई देते हैं। ज्यों ज्यों प्राणी सुख प्राप्त करना चाहता है, त्यों त्यों अधिक उलझनमें पडता चला जाता है। सुख तो मिलता नहीं उलटे अनेक प्रकारके दुःख ही दुःखमें गिरता है। कारण कि समस्त दुःखका मूल देहाभिमान है। **"न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहति रस्ति"** शरीरमें आत्माका अभिमान करने वाला व्यक्ति आत्मानन्द को जाननेका इच्छा करे, यह मानो काष्ठ बुद्धिसे ग्राहके द्वारा नदीपार करना चाहता है। **"शरीर पोषणार्थीसन् य आत्मानंदिदृक्षति ग्राहं दारुधिया धृत्वा नदी ततुंस इच्छति"** देहमें यह मोह ही मृत्यु है। भारतवासी सदा से शरीर स्त्री पुत्रादि मोह-अहंकार त्याग कर मोक्षमार्ग के पथिक होते आ रहे हैं। भारतवासियोंके जीवन का लक्ष्य परम पुरुषार्थ मोक्ष ही है। धर्म अर्थ, और काम इसी मोक्षका साधन है। किन्तु वर्त-

मान कालमें पश्चात् सभ्यताके चकाचौंधमें पड़कर कुछ व्यक्ति अपने लक्ष्यसे दूर होते जाते रहे हैं तथा सर्वानर्थका मूल देह सुखके लिए अर्थ और काम परायण होते हुए इस देहके सजानेमें ही लगे रहते हैं। और सर्वानर्थनिवृतिका मूलभूत धर्म एवं मोक्षको त्याग करते जा रहे हैं। समस्त दुःखका भण्डार माता-पिताके रक्तरेतसे उत्पन्न मल मूत्रसे भरा हुआ, हाड़ चाम रक्त मांसका पूतला असत शरीरमें सत्य बुद्धि करके इस देह सुखके लिए ही व्यग्र हैं।

भगवान्की बड़ी कृपा है कि इस रक्तमांसके बने शरीरमें चमड़ीसे पलस्तर कर दी है। यदि चमड़ेका पलस्तर नहीं होता तो मच्छी मच्छर उड़ानेके लिए एक हाथमें पंखा एवं कौवे कुत्ते भगावनेको दूसरे हाथमें डंडा लिए ही दिन बिताने पड़ते।

आये दिन अत्यन्त तुच्छ मिथ्या नाशवान इस देह सुखके लिए ही तो बड़े बड़े अनाचार पापाचार चोरी डकैती घुसखोरी और ब्लेकमारकेटीं आदि नाना प्रकारके उपद्रव हो रहें, जिससे देश त्रस्त है। साधारण व्यक्तिको कौन कहे, जिनके हाथमें देशकी सत्ता है विदेशोंमें जाकर शान्तिके गीत अलापते हैं। भ्राता और एकताके ठीकेदार बनते हैं, वे भी देह सुखके लिए आपसमें ही खींचातानी और ब्लेकमारकेटींके बाजार लगाए बैठे हैं। कहाँतक कहें यथार्थ एकता भ्रातृता के प्रतिपादक, एवं इहलोक तथा परलोकमें अभ्युदय प्राप्ति के मूलभूत साधन धर्मको देशसे निकालनेके उद्देशसे धर्म निर्पेक्ष राज्य कि घोषणा कर दी है। धर्मके प्रतिपादन करनेवाले श्रुति स्मृति और पुराणादि शास्त्र मनसूखकर दिए गए हैं। यह सब क्यों हो रहा है ? इसका एक मात्र उत्तर यही है, कि जैसे भी हो न्यायसे अन्यायसे उचित हो या अनुचित धन कमाओ देहसे सुख भोगो।

धनादि देह मिथ्या है, यह ज्ञान यदि हो जाए तो चोरी डकैती दूसरे को हिंसा करके धन प्राप्ति का प्रयत्न कौनकर सकता है।

वेदके रहस्य "सत्यं ब्रह्म जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैव नायपरः" इस ज्ञान प्राप्तिके साधन, धर्ममें प्रवृत प्राणी कभी भी पापाचार अनाचार नहीं कर सकता। इस वैदिक सिद्धान्तकी स्थापना हो जाए तो देशके सारे अनर्थ दूर हो जायें तथा सबलोग शान्ति पूर्वक अपना जीवन बिताने लगे।

स्थापयिष्य मिमं मार्ग प्रयत्ने नापिभोद्विज।
स्थापिते वैदिके मार्गे सकलं सुस्थिर भवेत्॥

"सत्यं ब्रह्म जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः" इस सिद्धान्त का प्रतिपादन यथामति लेखमें गुरूशिष्यके सम्वाद, रूपमें लिखा जा रहा है। जिससे सभी प्राणिको लाभ होवे।

वेदान्त सिद्धान्तमें जीव ब्रह्म एक है। यह ब्रह्मात्मैकत्व ज्ञान होनेपर जीव जन्म जरा मरणसे रहित होकर परमानन्द स्वरुप परमात्मासे एकत्व प्राप्त कर लेता है। इसी एकत्व ज्ञान का नाम मोक्ष है।

शिष्य–भगवन्? जिस आत्म स्वरूपके ज्ञानसे सब प्रकारके अनर्थ का विनाश हो जाता है, उसका स्वरूप कैसा है?

आचार्य–सच्चिदानन्द अद्वितीय अखण्ड अचल अज अक्रिय कूटस्थ अनन्त स्वप्रकाश स्वरूप ब्रह्मही आत्मा है।

"यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चत्ति विषयानिह।
यच्चास्य सन्ततो भावो तेनात्मेति गीयते॥

शिष्य—अनादि संसारमें जन्ममरण आत्माका स्वभाव है, या नैमित्तिक है, यदि स्वभाव है, तब तो मोक्षकी आशा भी नहीं करना चाहिये।

आचार्य–यह जन्म मरण नैमित्तिक है, क्या निमित्त है? सावधानतया सुनो। स्वाश्रय स्वविषय भावरूप अनिर्वचनीय अविद्या

आत्मा की शक्ति है। वह अविद्याशक्ति तदाश्रयत्व और स्वविषयत्वके बलसे सच्चिदानन्द अद्वितीय स्वरूपको आवरण कर लेता है। जैसे रस्सीका स्वरूप सर्पसे ढका हुआ सा प्रतीत होता है। उसी प्रकार सदानन्द स्वरूप कूटस्थ आत्मा आच्छादित होकर **नाहं आत्मा किन्तु मनुष्योऽहं** यह प्रतीत होने लगता है और अनात्मा देहादि में आत्मा मानकर जीव अपने परम पुरुषार्थसे च्युत होकर जन्म मरणादि अनेकानर्थमें पड़ जाता है। इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट निवृत्ति चाहता हुआ अविद्या कल्पित अनेक प्रकारके वैदिक लौकिक उपाय करने पर भी परमपुरुषार्थ मोक्ष नहीं प्राप्त करता है। जबतक अनात्मा और आत्माका विवेक नहीं होता तबतक समुद्रमें पड़ा हुआ तुम्बेको जैसे मकरादि जलजन्तु इतस्ततः खिचते रहते, हैं उसी प्रकार अविवेक भ्रममें पड़ा हुआ जीव राग द्वेषादिमें आकर्षित इतस्ततः सुर नर तीर्यगादि नाना योनियोंमें भटकता रहता है।

शिष्य-भगवन् ! इस भ्रम की निवृत्ति कैसे होती है ? ।

आचार्य--वेदविहित वर्णाश्रम धर्मानुष्ठानसे अन्तस्थित राग द्वेषादि मलोका नाश होता है। मल नाश होने पर शुद्धान्तः करणमें नित्यानित्य वस्तु का विवेक होता है। संसार अनित्य है, यह विबेक होनेपर, इहलौकिक मिथ्या स्रक चन्दन बनितादि एवं पार लौकिक अमृतादि भोगमें विराग होती है। विराग होनेसे नित्य आत्म वस्तुके जानने कि जिज्ञासा होती है। जिज्ञासा होनेसे साधन चतुष्टयसम्पन्न होकर श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ आचार्यसे वेदान्त श्रवण तदनन्तर मनन और निदिध्यासनसे ब्रह्मात्मैकत्व ज्ञान होने पर भ्रमकी निबृति हो जाती है **"ज्ञानादेवतु कैवल्यम्" "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य"** इत्यादि श्रुति इसमें प्रमाण हैं।

शिष्य—भगवन् ? आचार्यको ब्रह्मनिष्ठ होने पर तो अज्ञान तत्कार्य देहादिका सम्बन्ध ही नहीं ररता तव वह शिष्यको उपदेश कैसे करेगा ? ।

आचार्य—ज्ञानि को ब्रह्मात्मैकत्व ज्ञान होने पर भी प्रारब्ध कर्मके बलसे देहादि प्रतिभास होता है, प्रतिभास होनेसे उपदेश करता है। "शरीरा रम्भकस्य कर्मणो नियत फल त्वात् सम्यक् ज्ञाने प्राप्तावपि अवश्यं भाविनि प्रवृति वाङ् मनसो लब्ध वृतेः कर्मणो वलीयस्त्वात् मुक्तेष्वादि प्रवृति वत्" "तद्धि ज्ञानार्थं सगुरु मेवाभिगच्छेत्स-मित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्म निष्ठम्" 'तद्विद्धि प्रणि पातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेक्ष्यन्तिते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्व दर्शिनः" उपरोक्त सब बातोंको सुनकर विवेक, विराग षट् सम्पति और मुमुक्षुता यह साधन चतुष्टय सम्पन्न शिष्य गुरूको प्रणाम करके ताप शान्तिका उपाय पूछता है ।

शिष्य—भगवन् ? असार संसारमें तीन तापोंसे तप्त मेरे तापोंको शान्ति करनेकी कृपा करें ।

आचार्य—ब्रह्मैकत्व भावनाके बिना तापकी निवृत्ति नहीं हो सकती है ।

शिष्य—ब्रह्मैकत्व भावना कैसे होगी ? ।

आचार्य—त्वंपदके शोधनसे जीवत्वका अभाव होने पर ब्रह्मा-मैकत्व बोध सम्भव होता है। जैसे किसी ग्राममें चन्दन वृक्षको न जाननेसे यह चन्दन है, ऐसा ज्ञान नहीं होता है, किन्तु जब कोई बुद्धिमान व्यक्ति युक्तिसे ज्ञान करावे कि यह अत्यन्त सुगन्ध शीतल चन्दन ही है, अन्य वृक्ष नहीं है, तव उसको चन्दन वोध हो जाता है। तथा जैसे चन्दन और अगरका टुकड़ा जलमें पड़ जानेसे स्वाभाविक सुगन्ध मिटकर दुर्गन्ध निकाल देनेपर स्वाभाविक

सुगन्ध आजाता है। उसी प्रकार जब श्रुतिसे अवधारित—निश्चित् तत्वमस्यादि वाक्योंके तात्पर्यको गुरू युक्तिसे बोधन कराता है, तो सच्चिदानन्द स्वरूप आत्म ज्ञान अनुभव होने लगता है, तब संसार ताप नाश हो जाता है।

शिष्य—त्वंपद शोधनकी युक्ति क्या है ?।

आचार्य—युक्ति यह है, कि चेतन सहित देहेन्द्रि संहात त्वंपद-का वाच्यार्थ है, तथा केवल शुद्ध चेतन त्वंपदका लक्ष्यार्थ है। भाग त्याग लक्षणासे जडांश त्यागकर केवल शुद्ध चेतन ही को आत्मा जानना ही त्वंपदका शोधन है। जैसे कि—अनित्य, जड़, दृश्य, अमंगल स्वरूप देह है। तुम देह नहीं हो, किन्तु देहसे भिन्न शुद्ध चित् स्वरूप आत्मा हो।

शिष्य—अनित्य, जड़, दृश्य, अमंगल देह कैसे है ?।

आचार्य—यह शरीर माता पिताके रक्त रेत, मलमूत्रके भाण्डा गार गर्भमें रहा, मलमूत्रके साथ ही उत्पन्न हुआ। मलमूत्रसे भरा हाड़चामका एक पुतला है, अतः अमंगल है।

जन्मसे पहले भी नहीं था मरनेके बाद भी नहीं रहेगा, वर्तमान-में ही प्रतीति हो रहा है, अतः अनित्य है। दृश्य होनेसे जड़ है। "ममेदं शरीरं इति प्रतीयते" यह मेरा शरीर है, ऐसी प्रतीति सबको प्रत्यक्ष है। जैसे गृह कोश पशु और पुत्रादि मुझसे अन्य हैं, उसी प्रकार मेरा शरीर भी मुझसे अन्य ही है। अन्य होनेसे दृश्य है। भाव यह कि अमंगल, जड़, अनित्य, और दृश्य इस शरीरसे पृथक् तुम आत्मा हो एवं इस शरीरका द्रष्टा हो। यह शरीर पञ्चभूतोंके पञ्चीकृतसे रचा हुआ है, इसलिए भी जड़ है।

शिष्य—पञ्चीकृत कैसे होता है ?।

आचार्य—पञ्चभूतोंके मेलनका नाम पञ्चीकृत या पञ्ची

करण है। उसका प्रकार यह है, कि प्रत्येक पञ्चभूतोंको पृथक् २ दो भाग करो, आधेका पृथक् करके दूसरे अर्धांशमें चार चार भाग करो। अपने अर्धांश छोड़कर अन्य चारोंके अर्धांशमें एक भाग मिला दो पञ्चीकरण हो जाता है पञ्चीकृतभूतोंके पृथक् २ सत्वांशसे ज्ञानिन्द्रियाँ अर्थात् श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण यह पांच ज्ञानेन्द्रिय बनते हैं। इनसे शब्दादि पांच विषयोंके ज्ञान होता है। यथा आकाशके व्यष्टि सत्वांशसे श्रोत्रेन्द्रिय बनता है, इससे शब्दका ज्ञान होता है। वायुके व्यष्टि सत्वांशसे त्वक् बनता है, इससे स्पर्शका ज्ञान होता है। तेजके सत्वांशसे चक्षु इससे रुप ज्ञान होता है, जलके सत्वांशसे रसना बनता है, इस से रसका ज्ञान होता है। पृथिवीके व्यष्टि सत्वांशसे घ्राण वनता है, इससे गन्ध ग्रहण होता है।

इन्हीं पश्चभूतोंके समष्टि सत्वांशसे अन्तः करण याने मन,बुद्धि, चित्, और अहंकार बनता है। एवं पश्चीकृत पश्चभूतोंके व्यष्टि रजोगुणके अंशसे क्रमशः वाक् पाणि, पाद, वायु और उपस्थ यह पांच कर्मेन्द्रिय बनते है। और इन्हींके समष्टि रजोंशसे प्राण बनता है, तथा तमोंशसे शेष शरीर का निर्माण होता है। यह उपरोक्तमेलन क्रिया को वेदान्तमें पच्चीकरण कहते हैं।

तात्पर्य यह कि देह जड़ पश्चभूतोंके कार्य है, अतः जड़ है, जड़ होने से अनित्य तथा नाशवान् है। तुम जड़ अनित्यशरीर का द्रष्टा चेतन आनन्द स्वरुप आतमा हो।

शिष्य—-यह देह सु:ख दुःखका ज्ञाता होनेसे जड़ कैसे हो सकता है।

अचार्य—यह देह सुःख दुःखका ज्ञाता नहीं हैं। क्योंकि महाभूतोंका स्वभाव है, कि वे अपने आपको नहीं जानते है, तथा उनके अन्शसे बने इन्द्रिय गोलक भी अपनेको नहीं जानते तब इनके संघात यह देह भी सुःख दुःखको कैसे जान सकता है। जैसे निन्द्रामें कोई चोर

घरमें प्रवेश करके सव उपकरणको ले जाता हैं, लेकिन शरीर रहता हुआ भी नहीं जानता है।

शिष्य—भगवन् ! शरीर घट कुड्यके समान जड़ नहीं हो सकता है, क्योंकि घट कुड्यमें ह्रास वृद्धि आदि कोई क्रिया। नही होता, शरीरमें ह्रास बृद्धि आदि क्रिया देखी जाती है ?

आचार्य—चेतनमें भी क्रिया नहीं होती है। क्रिया तो घटी यंत्र (रहट) कूपमें आता जाता है, कभी पड़ा रहता है। कुलाल चक्र चलता रहता है, और उसमे अनेक शराव पुरवा घट आदि पात्र वनते हैं। वृक्षमें भी वायुके वेगसे क्रिया देखी जाती है। तो ये सब भी क्या चेतन है ?। क्रिया चेतनके सत्तासे जड़में होती है। केवल जड़ या केवल चेतनमें क्रिया नही होती है।

शरीर जड़ है। इसको इस प्रकारसे भी समझो। इस शरीरसे जो काठीन्य—अर्थात् अस्थि, मांस, स्नायुत्वक् ओर रोम है वह पृथिवीका अंश है। इसमें जो द्रव यानें रेत पित्त स्वेद लाल और रक्त है, वह जलांश है। उष्ण अर्थात् क्षुधा तृषा, निद्रा, कान्ति और आलस्य यह तेज है। इसमें क्रिया–चलना फैलना ऊपर ऊठना दौड़ना और सिकुड़ना यह वायुका अंश है। अवकाश–कटि, उदर हृदय, कण्ठ और शिर यह आकाशके अंश हैं। इन्हीं सव अवयवोंके मिला हुआ संघात यह देह है, अतः जड़ है। तुम इन सब अवयव और अवयवोंके संघात देह का द्रष्टा चेतन आत्मा हो।

शिष्य—देह मैं नहीं हुँ यह ज्ञान हुआ तो इससे क्या लाभ होता है ?।

आचार्य—वत्स ? देहाभिनानके कारण ही प्राणी देह सुखके लिए नाना प्रकारके भोग सामग्री जमा करता है। असंतुलित् (वढ़ा हुआ) देहाभिमानसे मनुष्य पशुवत् बन जाता है। आज

अध्यात्म विचार हीन बढ़ा हुआ देहाभिमानके कारण ही लोग अपना परम्परा छोड़ते जा रहे हैं, तथा हैंट, पैंट कोट शूट बूट धारण करके होटलनमें बोतल का सेवन कर रहे हैं। यह असंतुलित देहाभिमान्के सिवाय भ्रष्टाचारका मूल कारण दूसरा क्या हो सकता है ?। यह देह अनित्य नाशवान है। मैं देह नहीं हूँ यह ज्ञान-यदि हो जाए तो, इसके लालन पालनके लिए प्राणि अन्याय नहीं कर सकता है। तथा रहन, सहन आहार विहार आचार विचार शुद्ध एवं सदाचार बन जाता है। इसके अलावे जायते , अस्ति वर्धते, विपरीयामते अयक्षीयते और नश्यति यह षड्भाव विकारसे रहित होकर कर्तृत्व भोक्तुऋत्वसे छूट जाता है एवं संतुलित देहाभिमान सदाचारी व्यक्ति वर्णाश्रमाधिकारी होता है। अधिकारी होकर वर्णाश्रमका पालन न करनेसे पाप लगता है। और वर्णाश्रम धर्म पालनसे अन्तःकरण शुद्ध होने पर ज्ञानका अधिकारी बन जाता है। ज्ञान होने पर जग ज्जालसे प्राणी छूट जाता है।

वर्णाश्रम समाचार शास्त्र यन्त्रेण योजितः।
निर्गतोऽसि जगज्जाला त्पंजरा दिवकेशरी ॥
वर्णाश्रमाभिमानेन श्रुतेर्दाशो भवेन्नरः।
वर्णाश्रमा विहिनश्य वर्तते श्रुतिम्रुर्धनि ॥

शिष्य—देह आत्मा नहीं है, यह ज्ञान होनेपर भी मैं इन्द्रियः हूँ यह ज्ञान तो होता ही है। जैसे काणोऽहं, वधिरोऽहं इत्यादि।

आचार्य—जैसे तुम देह नहीं हो उसी प्रकार भूतोंके कार्य जड़ इन्द्रियां भी तुम नहीं हो।

शिष्य—इन्द्रियां यदि जड़ है तो अपने अपने विषयोंको कैसे जानते हैं ?।

आचार्य–इन्द्रियाँ तो अपनेको भी नहीं जानते हैं, विषयोंको कैसे जानेगें। इद्रियां तो शब्दादि विषय ज्ञानके साधन हैं जैसे रूप ज्ञानका साधन दीप है, उसी प्रकार सब इद्रियां अपने अपने विषय ज्ञानके साधन हैं।

शिष्य––देह इन्द्रिया मैं नहीं हूँ, किन्तु प्राण रहने पर ही देह एवं इन्द्रियोंमें चेष्टा होती है। एवं क्षुधा, पिपासाका अनुभव होता है, अतः मैं प्राण हूँ ?।

आचार्य––तुम प्राण भी नहीं हो। क्योंकि प्राण भी जड़ पदार्थ ही है सुषुप्तीमें उच्छूवास निश्वास रूपसे वर्तमान भी बाहर भीतर कुछ नहीं जानता है।

शिष्य–यदि प्राण भी जड़ है, तो शरीरमें चेष्टा कैसे करवाता है। वायु वेगसे बड़े बड़े वृक्षोंको उखाड़ फैंकता है। यदि चेष्टा स्वभाव है, तो आतमा क्यों नहीं है ?

आचार्य–-प्राणादि जड़ पदार्थमें क्रिया देखी जाती है वह स्वतन्त्र नहीं है, किन्तु कर्माधीन है। जिस समय जाग्रत् स्थिति निमित्तक कर्मोंद्भूत होता है, तब स्थूल विषयोंमें देह इन्द्रिय और मनका व्यापार (क्रिया) होता है। जब जाग्रत स्थिति निमितक–कर्मोंके उपक्षय हो जाता है, तब विज्ञानमय पुरुष बुद्धि उपाधि सम्पर्कसे जनित विशेष विज्ञानके द्वारा समस्त करणोंके शक्ति ग्रहण करके स्वप्न था सुषुप्तिमें चला जाता है। इस प्रकार तीनों अवस्थावोंके कर्म निरन्तर उद्‌भूता नुद्‌भूत होते रहते हैं "यत्रैषो पतत्सुप्तोऽभूद्य एषा विज्ञानमयः पुरुषस्त देषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय य एषऽन्तः हृदया काशस्तस्मिञ्छेते तानियदा गृह्णात्यथ ह्वै तत् स्वपिति नाम तद गृहीत एव प्राणो भवति गृहीता वाक् गृहीत चक्षु गृहीतं श्रौत्रं गृहीतं मनः" और कर्म निमित्तक

गमनागमन चलता रहता है। यह प्राण कर्म वशात् ही शरीरका पालन भी करता रहता है।

"प्राणेन रक्षन् नवरं कुलायं बहिष्कुलायाद मृतश्चरित्वा।
सईयतेऽमृतो यत्र कामं हिरण्मयः पुरुष एक हंसः।

उपरोक्त युक्ति ओर प्रमाणसे यह सिद्ध हो गया कि जड़, देह, इन्द्रिय, और प्राणमें जो क्रिया देखी जाती है, वह स्वतन्त्र नहीं है, किन्तु कर्माधीन है।

शिष्य—भगवन् ? मैं देह इन्द्रिय नहीं हूँ, किन्तु सुःख अनुभूति होती हैं, अतः मन हूँ ?।

आचार्य-तुममनभी नही हो, मनका स्वरुपक्या है, इसको जानो, उससमयमेरा मन चञ्चल था,अब स्वस्थ है। इन दोनो वृत्तियोंको जो जानता है, वह मन नही है। मन के ब्यापार के जाननेवाला मनसे भिन्न द्रष्टा है। वही मन बुद्धि है, ऐसा कहने पर प्रतिक्षण विलक्षण और एकसाथ भावनाके अयोग्य प्रतीत होता है। एक बृत्तिके नाश होनेसे अन्य वृत्तिकी उत्पति होती है :और सुषुप्तिमे मनो नाशके समान प्रतीत होता है। तात्पर्य यह की जाग्रत और स्वप्नमे मनके वृत्तियोंका अनुभव होता है, किन्तु सुषुप्तिमे मनके अभावसे वृत्तिका अभाव हो जाता है, अतः मन उत्पति विनाश वाला है। तुम मन नहीं हो सकते हो। 'मनो जातं मनो लीयते"यह व्यवहार भी प्रसिद्ध है।

यहाँ एक वात और जानना चाहिए कि जैंसे, जाग्रत् मे प्रतीत होने वाला स्थूल शरीर तुम नही हो, उसी प्रकार,

बुद्धि कर्मेन्द्रिय प्राण पञ्चकैर्मनसाधिया।
शरीरं सप्तदशभिः सूक्ष्म तल्लिङ्ग मुच्यते॥

पाँच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रि पांचप्राण, मन और बुद्धि इन सतरह तत्वोके समूह लिङ्ग शरीर भी तुम नहीं हो।

शिष्य—मै लिङ्ग शरीर नहीं हूँ तो इस ज्ञानसे क्या लाभ होता है।

आचार्य—लिङ्ग (सूक्ष्म) शरीर मैं नहीं हूँ यह ज्ञान हो गया तो गमना गमन—सुःखदु'ख स्वर्ग नरकादिके भोगसे छुटकारा हो जायगा।

शिष्य—जाग्रत् एवं स्वप्नमें अनेक प्रकार के सुःख दुःख का मैं अनुभव करता हूँ तो भी मुझे सुःख दुःख नहीं है यह कैसे हो सकता है ?।

आचार्य—जाग्रत एवं स्वप्नमें अनेक प्रकारकी वेदना प्रतीत होती है, किन्तु सुषुप्तिमे बुद्धि के अभाव से नहीं प्रतीत होती, अतः सुख दुःख बुद्धिका धर्म है आत्माके धर्म नहीं है। क्षेत्रके धर्म को अज्ञानी अपनेमें आरोप करके सुखी दुःखी मानने लगता है। जैसे जलस्थ चन्द्रमें जलोपाधिके विक्रियासे चन्द्रमामें विक्रिया मानने लगते हैं। "कामः संकल्पो विचिकित्सा, श्रद्धा, अश्रद्धा, धृति, अधृति ह्री, धी, भी रेतत् सर्वं मनएव" "इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः। एतत्क्षेत्रं समासेन सविकार मुदाहृतम्॥"

रागेच्छा सुख दुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते।
सुषुप्तौ नास्तितन्नाशे तस्मा बुधेस्तु नात्मनः॥

शिष्य—श्रुतिस्मृति गुरु कृपा और आत्मानुभवसे स्थूल सूक्ष्म शरीर एवं इन्द्रिय प्राण, मन और बुद्धि मैं नही हूँ, किन्तु इन सव का अनुसंधान कर्ता देही कौन है, मैं नहीं जानता, यह भ्रम मुझमें बनाही है। इस भ्रमको कृपया दूर करें ?।

आचार्य—मैं अपनेको नहीं जानता हुँ, यही तो कारण शरीर

अव्याकृत अज्ञान है। इसको इस प्रकार समझो कि समस्त दृश्यको पृथक् पृथक् रूपोंको जानते हो, और यह भी कहते हो, कि आत्माको नहीं जानता हूँ। इस अज्ञानका आश्रय तुमही हो। तुम्हारे आश्रयमें यह अज्ञानस्थित है कैसे ? इस प्रकार कि नहीं जानने वाला तुमसे अन्यनहीं है,क्योंकि तुम कह रहे हो कि मैं देही अपनेको नहीं जानता अतः इस,अज्ञानका आश्रय तुम हो। तुम्हारे आश्रयमें यह अज्ञान स्थित है। अज्ञान-भ्रमको तुम जानते हो, अतः तुम ज्ञान स्वरूप हो। तुम्हारे आश्रयमें स्थित जो अज्ञान उस अज्ञानसे पृथक् अज्ञानके जानने वाला तुम ज्ञान स्वरूप साक्षी हो। तुम दृश्य नहीं हो। स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, इन्द्रियां तथा अन्तःकरण इन सब दृश्योंसे भिन्न दृश्यसे विलक्षण ज्ञानमात्र साक्षी स्वरूप होते हुए भी कहते हो कि मैं अपने को नहीं जानता हूं। अखण्ड अनवच्छिन्न, दण्डायमान ज्ञान स्वरुप आप अपनेको नहीं जानते हो तो सुनो ! इन्द्रियां स्व (अपने) को नहीं जानतीं और अपने बृत्तिको भी नहीं जानती हैं,अतः जड़ हैं, और तुम इन्द्रिय तथा इन्द्रिय बृत्तियोको सदा जानते हो। मन और बुद्धि अपनेको और अपने व्यापार जाननेमें स्वतन्त्र नही हैं। तुम मन बुद्धि के व्यापारको जानते हो, अतः तुम ज्ञान स्वरूप हो। यथा "राहो शिरः अग्नि उष्णः प्रकाशः सूर्यः" यह व्यवहार लोकमे होता है, उसीप्रकार आत्मा और ज्ञानका व्यवहार हो रहा है, यथार्थमें ज्ञान स्वरूप आत्मा ही तुमहो। तथाच "येनवा पश्यति येनवा शृणोति येनवा गन्धाना जिघ्रति येनवा वाचं व्याकरोति येनवा स्वाद् चास्वादुच विजानाति तद्विज्ञानं ब्रह्म"। "यो वेत्ति विश्वं न च तस्य वेत्ता तामाहु रग्र्यं पुरुषं पुराणम्"।

"तस्यांभासा सर्वमिदं विभाति" स्मृतिरपि इन्द्रियाणि पराण्याहु रिन्द्रियेभ्योपरं मनः।

मन सस्तुपरा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तुसः ॥
इति निषेधमुखः । अथ विधि मुखः

आचार्य— तुम ज्ञप्ति मात्र हो, अतः तुममें अज्ञान नहीं है। जैसे सूर्यमें तम नहीं होता। तुममें अज्ञान नहीं है, अतः अज्ञानका निवर्तक ज्ञान भी तुमको नहीं है, क्योंकि तुम ज्ञान स्वरूप हो। जैसे दीपको दूसरे दीपकी अपेक्षा नहीं होती है स्वयं प्रकाश होनेसे अतः अज्ञानसे होनेवाला बन्ध मोक्ष भी तुमको नहीं है। तुम नित्य मुक्त हो। यथा—

अज्ञान संज्ञौ भव बन्ध मोक्षौ
द्वौनाम नान्यौस्त ऋतज्ञ भावात्
अजस्र चित्यात्मनि केवले परे
विचार्यं माणे तरणा विवाहिनी ॥१॥

अनात्मन्यात्मधी बन्धस्तनाशो मोक्ष उच्यते।
बन्धमोक्षौन विद्यते, नित्य मुक्तस्य चात्मनः ॥२॥

चित्रद्रूप हो चित् त्रिकालावाध्य होनेसे सद्रूप भी हो। भाव यह है कि जो चित् (ज्ञान) स्वरूप द्रष्टा जाग्रत अवस्थामें शब्दादि विषयोंका ज्ञाता है, वही करणोंके उपसंहृत होने पर जाग्रतके वासनासे वासित स्वप्नके विषयोंका ज्ञाता है, क्योंकि जागनेपर कहता है, कि मैंने स्वप्नमें हाथी देखा। यदि स्वप्न द्रष्टा अन्य होता तो जागने पर हाथी देखा यह नहीं कहता, किन्तु कहता है, अतः जाग्रत् द्रष्टाहि स्वप्न द्रष्टा है। तथा जो जाग्रत और स्वप्नका द्रष्टा है, वही सुषुप्तिमें भी है। सुषुप्तिसे जागकर कहता है "सुखमस्वाप्सम्" सुखसे सोया। मतलब यह है कि जो जागता

था वही सोनेमें सुखका स्मरण करता हुआ कहता है कि मैं सुखसे सोया। अतः जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थामें ज्ञान स्वरूप तीनों अवस्थाके द्रष्टा एक ही आत्मा है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो चित् ज्ञान स्वरूप है वही सद्रूप है। अतः तुम नित्य, सद्, चित् रूप हो।

तुम आनन्द स्वरूप भी हो। जब इन्द्रियाँ अपने अपने व्यापारमें व्यापृत् होनेसे श्रमित हो जाती हैं। तब उस श्रमको दूर करनेके लिए स्वरूप सुषुप्तिमें जाकर व्यापार शून्य हो कुछ काल शान्त रहती हैं। शब्दादि विषयसे रहित सर्वोपद्रव शून्य निस्तरङ्ग शान्त समुद्रके समान जो स्थिति है, वही सुख–आनन्द का स्वरूप है। अतः तुम आनन्द स्वरूप हो।

यह आत्मा परमानन्द स्वरूप है। क्योंकि परम प्रेमका आस्पद है। संसार के अन्य वस्तुमें जों प्रेम हैं, वह सातिशय = सप्रयोजन है, किन्तु आत्मामें प्रेम निष्प्रयोजन है। जो निष्प्रयोजन प्रेम होता है वही परम प्रेमास्पद होता है। सभी प्राणी चाहता है कि– **"मान भूवं ही भूयासमितिप्रेमात्मनीक्षते"** मैं (न) होऊँ किन्तु सदा बना रहूँ, अतः तुम पर प्रेमास्पद होनेसे परमानन्द रूप हो।

जैसे यहाँ आत्माको सच्चिदानन्द रूपता बतलाया गया है उसी प्रकार **"तत्त्वमसि"** इस वाक्यमें त्वं पदका लक्ष्यार्थ भी सच्चिदानन्द किया गया है, और तत्पदका लक्ष्यार्थ भी सच्चिदानन्द है। इन दोनों याने त्वंपद और तत्पदका वाच्यार्थ त्यागकर भाग त्याग लक्षणासे लक्ष्यार्थ (तत्त्वं) दोनोंका अखण्डै रसत्व वेदान्तमें एकत्व प्रतिपादन किया गया है। अतः एक अद्वितीय भी तुम हो ब्रह्मासे लेकर पिपिलिका पर्यन्त समस्त प्राणियोंमें अनुस्युत होकर सबको अन्तर्थमन करता है, अतः सबका अन्तर्यामि आत्मा साक्षी रूपसे एक ही है।

"एको देवः सर्वभूतेषु गुढ़ः सर्वव्यापि सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च"।

इत्थं सच्चित्परानन्द आत्मायुक्त्या तथा विधम् ।
परं ब्रह्म तयोश्चैक्यं श्रुत्यन्तेषूपदिश्यते ॥

शिष्य—साक्षी और साक्ष्य दो होते हुए एक कैसे कहते हैं ? ।

आचार्य—मिट्टीके विकार घट शरावादि मिट्टीसे भिन्न नहीं होता। सुवर्णका विकार सुवर्ण ही होता है तथा चित्का विवर्त भी चित् ही है। रज्जुमें सर्प एवं शुक्तिमें रजतके तुल्य हैं।

स्वगत् सजातीय और विजातीय भेद शून्य सैन्धव घनवत् अखण्डैकरस भी हो। जन्म मृत्यु रहित होनेसे अज भी हो। "न जायते म्रियते वा कदाचित्" इत्यादि।

अचल और अक्रिय भी हो। जैसे चूम्बकके संनिधानसे जड़ लौहमें क्रिया देखी जाती हैं, उसी प्रकार सच्चिदानन्द स्वरूपके सत्तासे देहेन्द्रिय प्राण और बुद्धिमें क्रिया प्रतीत होती है। यथार्थमें आत्मा अक्रिय एवं अचलही है।

"आत्म चैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रियमनोधियः ।
स्वकीयार्थेषु वर्तन्ते सूर्या लोके जना इव ॥

अविकारी होनेसे कूटस्थ हो, एवं। अव्यक्तादि पृथिवी पर्यन्त समस्त तत्वोंके उत्पन्न होनेसे प्रथम व्यापक चैतन्य वर्तमान है, यथा-घटाकाश के प्रथम भी महाकाश रहता है अतः व्यापक चैतन्य सदा वर्तमान रहनेसे अनन्त भी हो।

"बृहत्त्वा द्बृंहणत्वाद्वा प्रत्यगात्मेति चोच्यते ।
तत्वं ब्रह्मपरं रूपं गीयते बहुधाश्रुतिः ॥

सच्चिदानन्दा द्वितीयं अखण्डं, अचलं, अजं, अक्रियं कूटस्थं अनन्तं, स्वप्रकाशं तदेवाऽहम् । इन द्वादशलक्षणोसे लक्षित जो ब्रह्म है, वही मैं हूँ ॐ इति, एवं नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभास्त्वम् । इति तवानुभूति । तथाच श्रुतिः ॥ **"आत्मावा इदमेक एवाग्र आसीत्" "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" "अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्" "योऽयं विज्ञानमयः पुरुषः" "विज्ञान मानन्दं ब्रह्म" "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"** इत्यादि मन्त्रोंसे एवं इस प्रकार सैकड़ों अन्य मन्त्रोंसे लक्षित जो परब्रह्म है, वही आत्मा है वही आत्मा तुम हो । श्रुतिवाक्य गुरुके उपदेश एवं स्वानुभवसे "ब्रह्मास्मि" इस ज्ञानसे मुक्त याने जन्ममरण रहित हो जाता है । "नान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय' । अयनाय=अपुनरावृत्तये =अर्थात् संसारमें पुनः आना न पड़े इसका दूसरा कोई मार्ग नहीं है । अभेद ज्ञानसे ही, जन्म मृत्युसे छुड़ा सकता है । अभेद ज्ञान हुए बिना द्वैत प्रपञ्च की निवृत्ति नहीं होती । अभेद–ब्रह्मात्मैकत्व ज्ञान होने पर राग द्वेषादि सब प्रकारके विकारसे रहित प्राणि परमशान्तिका अनुभव करता है । "ब्रह्मास्मि, यह ज्ञान होनेसे संसारमें सब कर्म करता हुआ भी कर्मसे लिपायमान नही होता है । यह ज्ञान होनेपर अन्य कोइ ज्ञातव्य शेष नही रह जाता है । **आत्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञात, इदं सर्वं विदितम्" "एक एव आत्मा परं ब्रह्म सर्वं संसार धर्म वर्जितम् ।**

शिष्य––ब्रह्मात्मैकत्व ज्ञान होनेसे पूनर्जन्म नही होता, यह बात आपने कहा, तथापि ज्ञान होनेके पूर्व इस जन्म एवं अतीत अनेक जन्मोंके किये हुए कर्म तो नाश नहीं हो सकता है । सर्वंकर्म संहत होकर एक जन्म अथवा अनेक जन्ममें कर्मफल तो भोगना ही पड़ेगा,

अन्यथा कृतप्रणाश का प्रसंग:होगा, एवं कर्मोंमें अनास्था, तथा शास्त्र अनर्थक हो जाएगा। **"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभा शुभम् ?"**

आचार्य--ज्ञानाग्निसे संस्पृष्ट होनेपर सव कर्मोंके वीज नष्ट हो जाता है, अतः भर्जित वीजके समान कर्म जन्म देनेमे समर्थ नहीं होते। **'वीजाऽन्युपदग्धानी न रोहान्ति यथापुनः। ज्ञान दग्धैस्तथा क्लेशैः नात्मा संपदह्यते पुनः ॥"**

शिष्य---ज्ञानके सहभावि ज्ञानके पश्चात् किये कर्म तो नष्ट हो सकता है, किन्तु ज्ञानके पूर्व किये कर्म बिनाश कैसे होगा ?

आचार्य--**"यथैषी का तुलमग्नौ प्रोतं प्रदह्यते एवं खलु सर्वं कर्माणि प्रदह्यन्ते।** जैसे ईषिका तृण विशेष और तुल अग्निमें भस्म हो जाता है। उसी प्रकार ज्ञानाग्निसे सर्व कर्मभस्म हो जाते। **"ज्ञानाग्नि सर्वं कर्माणि भस्मसात कुरूतेऽर्जुन"।**

शिष्य—सर्वकर्माणि यह विशेषण होने पर भी जैसे प्रारब्ध कर्म का नाश नही मानते उसी प्रकार पूर्व कृत अनारब्धकर्मों का भी बिनाश नही होगा ? ।

आचार्य--**"यथा पुष्कर पलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवंविद्दि पापं कर्मन श्लिष्यत।"** जैसै कमल पत्तेमें जलका संश्लेश नहीं होता उसी प्रकार ज्ञानीको किसी भी कर्मका संश्लेश नही होता। पाप कर्म उपलक्षण है, ज्ञानिको पुण्य भी पाप ही होता है। और प्रयोजन-फलाकांक्षा निबृत होनेके कारणभी अविद्यावस्थामें किए गए कर्म निवृत हो जाते है। जैसे चल चूका वाण बेग समाप्त होने ही पर गीरता है, उसी प्रकार प्रारब्ध-आरम्भ दुआ कर्म भी वेग समाप्त

होने पर शान्त हो जाता है। उत्खात दंष्ट सर्प (दांत निकाला सर्प) के समान प्रारब्ध कर्मसे ज्ञानीको कोई हानि भी नहीं होती है।

शिष्य—जैसे तन्तुके नाश होनेपर पटका विनाश हो जाता है, उसी प्रकार कारण अविद्याके नाश होनेपर अविद्याके कार्य शरीर भी विनाश होना चाहिए फिर ज्ञानी प्रारब्ध कर्म कैसे भोगता है ?

आचार्य—कारणके नाश होनेपर भी कुछ क्षण कार्य बना रहता रहता है। जैसे रज्जुके ज्ञानसे सर्प निवृत्त होनेपर भी सर्प ज्ञानसे हुआ जो कम्पादि वह शनैः शनैः निवृत होता है।

"ज्ञात्वाप्यसर्पं सर्पोऽर्थं यथा कम्पन्न मुंचति।
विध्वस्ता खिल मोहोऽपि मोह कार्यं तथात्मनि॥

दूसरी वात यह है कि ज्ञानीके शरीर लोकोपकारके लिए भी रहता है।

शिष्य—ज्ञानी तो असंग रहता है, लोकोपकार कैसे करता है।

आचार्य—ज्ञानी तीन प्रकारसे लोकोपकार करता है। दर्शन से पापक्षय ज्ञानीके सेवासे श्रेयो वृद्धि **"तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेत्भूति कामः"** । और तीसरा उपदेशसे मोक्ष होता है। ज्ञानी स्वयं तरता है एवं संसारी जीवोंको भी तारता है।

इस ज्ञानसे जीव अभय हो जाता है। **"अभयं वैजनक प्राप्तोऽसि"** समस्त शोकोसे तर जाता है। **"तरति शोक आत्मवित्"**। यही ब्रह्मात्मैकत्व ज्ञान समस्त वेदान्तका तात्पर्य है। **"सत्यं ब्रह्म जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"**। यह ज्ञान होनेपर जीव किसीका दास नहीं होता है। यही स्वतन्त्रता है यही स्वराज्य है।

"सर्वभूतस्थ मात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
समपश्यन्नात्म याजी स्वाराज्य मधिगच्छति॥

इस ज्ञानके बिना राज्य 'शव' राज्य है। यही भारतका निधि है, यही अपनी भारतीय संस्कृति है। इसी ज्ञानके बलसे भारत जगद्गुरू कहलाता था।

"नहीं ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते"।

यह ज्ञान परमपवित्र है इस ज्ञान प्राप्तिके साधन बतलाते हुए भक्त वत्सल देवकी नन्दन भगवान् अर्जुन से कहा–

"नियत्तं कुरू कर्मत्वं कर्म ज्ययोह्य कर्मणः"
"स्वकर्मणातमभ्यर्च्य सिद्धिं विदन्ति मानवाः"।

"श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः पर धर्मात्स्व निष्ठितात्"। इत्यादि यहाँ नियत्कर्म स्वकर्मका अर्थ है, श्रुति स्मृत प्रतिपादित वर्णाश्रम धर्म भगवान् भाष्यकार जगद्गुरु श्री शकरा चार्य लिखते हैं, "नियतं नित्यं शास्त्रोपदिष्टं यो यस्मिन्कर्मण्यधि कृतः फलाय चाश्रुतं तन्नियतं कर्म तत्कुरू हे? अर्जुन"। भाव यह कि जिस वर्ण या आश्रममें जो अधिकृत है, उस वर्ण या आश्रमके लिए विहित जो कर्म, वही उसका नियत कर्म या स्वकर्म है। उसीको निष्काम भावसे आचरण करनेसे मनुष्य शुद्धान्तः करण होकर श्रेय प्राप्त कर सकता है।

इस समय विदेशी शिक्षासे प्रभावित होकर, विज्ञानके चाक्य चिक्यमें धर्मके नाम सुनकर नाक भौं सिकोड़ने लग जाते हैं। धर्म शब्द सुनते ही ऐसा लगता है मानो शरीरके देवता निकलकर भागने लगते हैं या ऐसा लगता है कि धर्म कोई खुंखार जानवर है, काट खानेको दौड़ता है। लेकिन बात ऐसी नहीं है। धर्म तो

रक्षक है। र क्षित धर्म रक्षा करता है मरा हुआ धर्म मार डालता है। "धर्मो रक्षति रक्षितः" धर्म तो साक्षात् नारायण कहा गया है। "वेद प्रणि हितो धर्मोह्य धर्मस्तद्विपर्ययः। वेदो नारायणः साक्षात् स्वयंम्भूरिति शुश्रुम" जिस कालमें संसारके समस्त वस्तु छुट जायगी, यहाँ तक—कि जब शरीर भी, साथ नहीं देगा, उस समय धर्म ही सहायक होगा। ऐसे प्रिय वस्तु धर्मको न जानना या जानकर न पालन करना प्रमाद ही कहा जा सकता है।

यहाँ इस बातको भी जानना आवश्यक है कि वर्णाश्रम धर्ममें चारो वर्णोंकी दिनचर्या समान नहीं है प्रत्येक वर्णकी दिन चर्या शास्त्रमें भिन्न भिन्न बतलाथी है वैसा ही प्रथम तीन वर्णोंमें याने द्विजातीमें चार आश्रम रहते हैं ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ, और सन्यासी इन सबकी भी दिनचर्या अलग अलग रहती है, इन सबका ज्ञान किसी जानकार व्यक्तिसे प्राप्त कर वैसी अपनी दिनचर्या रखनी चाहिये अन्यथा वर्ण आश्रमका विचार न रखते हुए यदि कोई आचरण करता है तो उसका परिणाम अनिष्ट अनिवार्य है, गीता कहती है।

ये शास्त्र विधि मुत्सृज्य वर्तते काम कारतः
न स सिद्धि मवाप्नोति नसुखं न परां गतीम्॥

शास्त्रानुकूल दैनिक कर्म ही धर्म है? दूसरे शब्दमें इसीको दिनचर्या कह सकते हैं। यहाँ इसका भी ध्यान होना चाहिए कि दिनचर्या सभी जीवको कुछ न कुछ होती है। किन्तु विना जाने जो चर्या है, वह अध:पतन शूकर कूकर योनिमें प्राप्त कराने वाली होती है, तथा ज्ञानपूर्वक चर्या देवादि उत्तम योनिमें प्राप्त कहाती है। यथा, प्राप्तः चार वजनेसे पहिले उठना भगवान्का स्मरण कर विधिपूर्वक शौच स्नानादि संध्या वंदन् भगवत् पूजनादि

शास्त्रीय दिनचर्या करना लेकिन दैनिक कर्मका, ज्ञान न होनेसे प्राय पशुके समान खड़े खड़े पेशाब करना शौच करके साबुनसे हाथ धोना जूता पहिरे जिस किसीके हाथसे भोजनकर लेना. विना हाथ मुह धोए साफीसे हाथ मुह पोछ लेना,इस प्रकार और भी अनेकों निन्दित व्यवहार आजके जन्टुलमैन कहनेवालेको देखा जाता है। इस प्रकारके दूषित आचरणका प्रभाव मन पर पड़ता है, अतः मनमें अनेक प्रकारके दुर्भावनायें तरह तरह भोगवासना घर करने लग जाते हैं। भोगवासना बढ़नेसे विवेक नष्ट हो जाता है। विबेक नष्ट होनेसे प्राणी अनेकानेक अनर्थ करने लग जाता है। आज इसका फल देश भोग रहा है। तमाम देशमें अनाचार पापाचार लूट खसोट धोखा धड़ी एवं अविश्वास बढ़ता जा रहा है।

शिक्षादूषित होनेके कारण स्कूल कालेज के स्नातक युवकोंके अपनी देशके दिनचर्याका ज्ञान ही नहीं कराया जाता तो उनको अपने कर्त्तव्य का ज्ञान कैसे होवे। अतः सत्यं वद, धर्मं चर मातृ देवाभव. पितृ देवोभव, आचार्य देवोभव, इस वैदिक उपदेश पालनमें लोग प्रमाद करते जा रहे हैं। जीन लोगोंने अपना कर्तव्य समझकर कर्तव्य पालन किया, उन्हीं लोगोंने अपना एवं देशका कल्याण किया इस विषयमें इतिहास साक्षी है। नेत्रका काम श्रोत्र श्रोत्रका काम नेत्र एवं मुखका काम नासिका तथा नासिका काम मुखके करने पर जो दशा शरीर की होगी, वह दशा आज देशकी हो तीजा रही है।

यदि भारतको भारत बनाना है, एव सुख शान्ति प्राप्त करना हो, तो भारत शब्द का यथार्थ, अर्थ समझे 'भा' **मनोमयः प्राण शरीरोभा रूपः"**

भा रूपः भा दीप्ति श्चैतन्य लक्षणं यस्य स भारूपः"

चैतन्य लक्षण परमात्मा ही भा शब्दसे कहा गया है। उस परमात्मामें रक्त=संलग्न जनता ही भारतीय जनता कहला

सकती है। भा=चैतन्य स्वरूप परमात्मामैं संलग्न होनेका, एक मात्र उपाय वेद प्रतिपादित वर्णाश्रम धर्मका, निष्काम भावसे पालन करना ही है। उसमें रति होनेकी दूसरी कोई युक्ति नहीं है।

'यतः प्रवृत्ति भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दन्ति मानवाः॥

अतः यदि भारत का गौरव बचाना हो एवं भारतीय कहलानां चाहो, तो, भारतीय जनता ओर कर्ण धारोंको अपना कर्तव्य समझकर निःस्वार्थ भावसे पालन करना चाहिए निःस्वार्थ =निष्काम कर्मके पालनसे रागादि मनो विकार दूर होने पर, शुद्धान्त करणमें ब्रह्मात्मैकत्व ज्ञानसे परमानन्द सुख एवं शान्तिकी प्राप्ति हो सकती है।

स्थापयिष्यमिमं धर्मं प्रयत्ने नायिभोद्विज।
स्थापिते वैदिक मार्गं सकलं सुस्थिरं भवत्॥

शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

श्रीगोविन्द मुद्रणालय, बुलानाला, वाराणसी।